Ll.b.
2semester
Legal history.

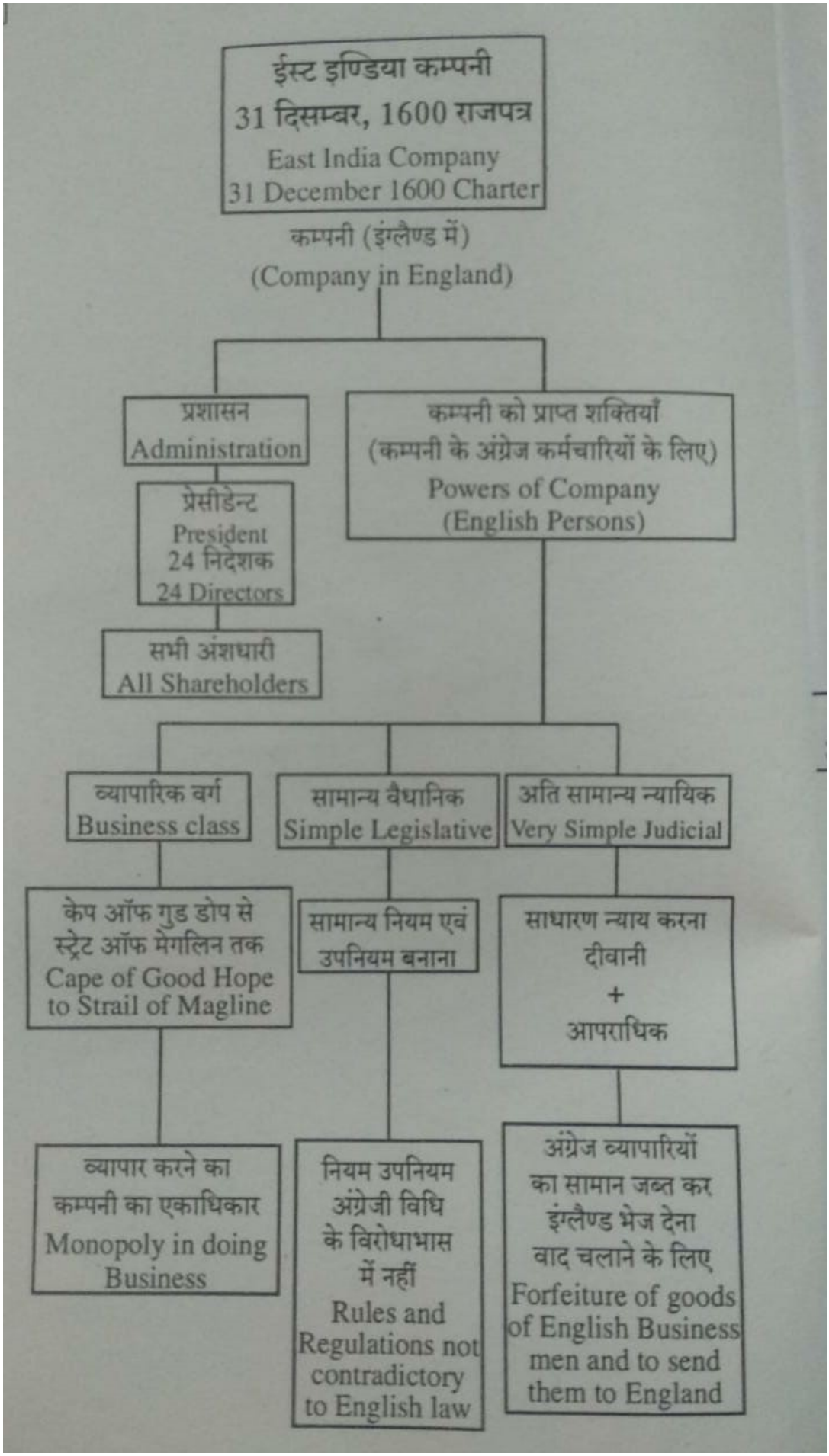
ईस्ट इण्डिया कम्पनी
31 दिसम्बर, 1600 राजपत्र
East India Company
31 December 1600 Charter
कम्पनी (इंग्लैण्ड में)
(Company in England)
प्रशासन
Administration
प्रेसीडेन्ट
President
24 निदेशक
24 Directors
सभी अंशधारी
All Shareholders
कम्पनी को प्राप्त शक्तियाँ
(कम्पनी के अंग्रेज कर्मचारियों के लिए)
Powers of Company
(English Persons)
व्यापारिक वर्ग
Business class
सामान्य वैधानिक
Simple Legislative
अति सामान्य न्यायिक
Very Simple Judicial
केप ऑफ गुड डोप से
स्ट्रेट ऑफ मेगलिन तक
Cape of Good Hope
to Strail of Magline
सामान्य नियम एवं
उपनियम बनाना
साधारण न्याय करना
दीवानी
+
आपराधिक
व्यापार करने का
कम्पनी का एकाधिकार
Monopoly in doing
Business
नियम उपनियम
अंग्रेजी विधि
के विरोधाभास
में नहीं
Rules and
Regulations not
contradictory
to English law
अंग्रेज व्यापारियों
का सामान जब्त कर
इंग्लैण्ड भेज देना
वाद चलाने के लिए
Forfeiture of goods
of English Business
men and to send
them to England

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रारम्भिक शासन-काल

(THE EARLY PERIOD OF EAST INDIA COMPANY'S RULE IN INDIA)

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का श्रेय ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ही है जिसने इस देश में सर्वप्रथम एक साधारण व्यापारिक कम्पनी के रूप में ब्रिटेन का व्यापार बढ़ाने के उद्देश्य से प्रवेश किया था। इस कम्पनी का वास्तविक नाम 'दि गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑफ मर्चेन्ट्स ऑफ लण्डन ट्रेडिंग इन टू दि ईस्ट इंडीज' (The Governor & Company of Merchants of London Trading into the East Indies) था तथा इसे ब्रिटेन की सम्राज्ञी एलिजाबेथ के एक चार्टर द्वारा ईस्ट इंडीज में व्यापार करने के लिए अधिकृत किया गया था।

सन् 1600 का राजलेख (Charter)

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का संविधान, शक्ति तथा सुविधाओं आदि का विवरण इंगलैण्ड के सन् 1600 के राजलेख द्वारा घोषित किया गया जो 31 दिसम्बर, सन् 1600 को लागू किया गया। प्रारम्भ में कम्पनी का अस्तित्व केवल 15 वर्षों के लिए निर्धारित किया गया परन्तु उसमें यह प्रावधान भी था कि कम्पनी का व्यापार लाभप्रद सिद्ध न होने की दशा में इंग्लैण्ड का सम्राट् इस राजलेख के अन्तर्गत उसे दो वर्ष पूर्व सूचना देकर समाप्त कर सकेगा। इस राजलेख द्वारा कम्पनी को व्यापार का एकाधिकार प्राप्त हुआ तथा अन्य ब्रिटिश व्यापारियों का अनधिकृत रूप से स्वतन्त्र व्यापार करना अवैध घोषित कर दिया तथा ऐसा करने पर वे दण्ड के भागी थे जो प्रायः उनके माल तथा जहाज आदि की जब्ती के रूप में होता था। कम्पनी का कार्य प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित था। कम्पनी के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने प्रबंधन हेतु एक जनरल कोर्ट स्थापित करे जो प्रत्येक वर्ष के लिए एक गवर्नर और चौबीस डाइरेक्टरों की चुनाव द्वारा नियुक्ति करे। ये डाइरेक्टर गवर्नर की अध्यक्षता में अपना स्वयं का एक कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स बनाते थे जिसका कार्य कम्पनी के व्यापारिक हितों की देखभाल करना था। सामान्यतः गवर्नर तथा प्रत्येक डाइरेक्टर का कार्यकाल एक वर्ष का होता था, परन्तु जनरल कोर्ट द्वारा अयोग्य घोषित किए जाने पर उसे इस अवधि की समाप्ति के पूर्व भी निलम्बित किया जा सकता था। गवर्नर तथा डाइरेक्टरों को अपने पद पर पुनः चुने जाने की पात्रता थी।

कानून बनाने सम्बन्धी कम्पनी की अधिकार-शक्ति

सन् 1600 के राजलेख (Charter) द्वारा कम्पनी को अपनी बस्तियों में कुशल प्रशासन के लिए सीमित मात्रा में कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गई थी। इसका उद्देश्य यह था कि कम्पनी अपने कर्मचारियों को अनुशासन में रखने के लिए आवश्यक नियम बना सके जो व्यापारिक दृष्टि से कम्पनी के हित में हो। कर्मचारियों द्वारा इन नियमों का उल्लंघन किये जाने की स्थिति में उन्हें कम्पनी द्वारा उचित अर्थदण्ड अथवा साधारण कारावास का दण्ड दिया जा सकता था परन्तु कम्पनी को इससे अधिक दण्ड देने की अधिकार शक्ति न होने के कारण हत्या तथा अन्य गम्भीर अपराधों के मामलों में उसकी दण्ड-विधि अपर्याप्त थी। राजलेख (Charter) में यह उल्लेख नहीं था कि कम्पनी द्वारा निर्मित विधियाँ किसी निश्चित अंग्रेजी-बस्ती (फैक्ट्री) या क्षेत्र-विशेष में लागू होंगी। सम्भवतः इसका कारण यह था कि इंग्लैण्ड के शासकों ने यह कल्पना कभी नहीं की थी कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी जैसी सामान्य व्यापारिक कम्पनी विदेशी भूमि पर आधिपत्य जमा सकती है। सन् 1621 में भारत के पूर्वी समुद्री तट पर स्थित आंग्ल-बस्तियों की व्यवस्था तथा प्रशासन के लिए कम्पनी द्वारा निर्मित विधानों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भिक शासन-काल में उसकी विधायनी शक्ति (Legislative Power) अत्यधिक सीमित थी। इन उपबन्धों के अन्तर्गत कम्पनी ने स्वयं के बन्दरगाह को अपना प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बनाया[1] तथा अपने कर्मचारियों के लिए आवश्यक आवास आदि बनाये।

---

1. कीथ (Keith) : कॉन्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (1936) पृ० 5.

उल्लेखनीय है कि यद्यपि प्रारंभिक काल में कम्पनी की कानून बनाने सम्बन्धी शक्ति न्यूनतम थी किन्तु इसी विधायिनी शक्ति के परिणामस्वरूप कालांतर में भारत में आंग्ल-भारतीय (Anglo-Indian) संहिताओं का सृजन हुआ तथा कम्पनी भारत में अंग्रेजी शासन स्थापित करने में सफल हो सकी।[1]

सन् 1609 का राजलेख (Charter of 1609)

महारानी एलिजाबेथ द्वारा स्वीकृत सन् 1600 के राजलेख के अन्तर्गत कम्पनी को पूर्वी देशों में व्यापार करने का एकाधिकार दिया गया था। इस चार्टर के अनुसार कम्पनी को यह अधिकार था कि वह ईस्ट इण्डीज को भेजे जाने हेतु व्यापार-मण्डलों का गठन करे। तदनुसार कम्पनी ने अपने प्रशासन तथा प्रबन्ध के लिए कुछ कानून बनाये जो उसकी सुरक्षा की दृष्टि से भी आवश्यक थे। लगभग नौ वर्षों की अवधि में कम्पनी ने अपने कार्य-क्षेत्र में पर्याप्त विस्तार कर लिया जो ब्रिटेन की सरकार के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ। इसके परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड के तत्कालीन सम्राट् जेम्स-प्रथम ने 31 मई, 1609 के राजलेख द्वारा कम्पनी का कार्यकाल अनिश्चित समय के लिए बढ़ा दिया तथा सन् 1600 के चार्टर में दिये गये कम्पनी के पन्द्रह वर्ष तक कार्य कर सकने सम्बन्धी बन्धन को समाप्त कर दिया गया। परन्तु इस चार्टर में यह स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि तीन वर्ष की पूर्व सूचना देकर ब्रिटिश सम्राट् द्वारा भारत स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कारोबार किसी भी समय समाप्त किया जा सकता था।

भारत में प्रथम आंग्ल-बस्ती (The First British Settlement in India)

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत में पदार्पण के पश्चात् उसे सर्वप्रथम ऐसे स्थान की आवश्यकता थी जो व्यापारिक दृष्टि से उपयुक्त हो। इसके लिए कम्पनी ने सूरत को चुना जो उस समय मुगल सम्राट् जहाँगीर के शासनाधीन एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय बन्दरगाह होने के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए विशेष रूप से उपयोगी था। परन्तु इसमें कम्पनी को कुछ कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा। उस समय यह नगर पुर्तगालियों के आधिपत्य में होने के कारण अंग्रेजी कम्पनी को वहाँ अपना व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने के लिए पुर्तगालियों से संघर्ष करना पड़ा। अन्त में सन् 1612 में अंग्रेजों ने पुर्तगालियों को सूरत से निष्कासित करने में सफलता प्राप्त की तथा मुगल सम्राट् की अनुमति से वहाँ अपना व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। कम्पनी के समक्ष दूसरी समस्या यह थी कि उसकी आंग्ल-बस्तियाँ मुगल सम्राट् के सीमा-क्षेत्र से विभिन्न स्थानों में फैली हुई थीं; अतः कम्पनी को उन पर नियन्त्रण रखना कठिन था। इस कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से ब्रिटिश सम्राट् जेम्स प्रथम ने सन् 1615 में अपने विश्वस्त दूत सर टॉमस रो (Sir Thomas Roe) को इंग्लैण्ड से भारत भेजा। सर टॉमस रो सन् 1615 में मुगल बादशाह के आगरा स्थित दरबार में पहुँचा तथा उसने मुगल बादशाह से ब्रिटिश कम्पनी के लिए निम्नलिखित सुविधायें प्राप्त कीं—

(1) भारत में स्थित अंग्रेजों को उनके धर्म, विधि एवं परम्पराओं के अनुसार रहने की अनुमति दी गयी।

(2) अंग्रेजों को यह सुविधा दी गयी कि वे अपने आपसी झगड़े कम्पनी के मुख्य प्रशासक, जो प्रेसीडेन्ट कहलाता था, के समक्ष प्रस्तुत करें तथा उन्हें अंग्रेजी न्यायाधिकरण (Tribunals) द्वारा ही निपटायें। परन्तु ऐसे प्रकरण जिनमें एक पक्ष अंग्रेज तथा दूसरा भारतीय हो, केवल भारतीय न्याय अधिकारियों द्वारा ही निपटाये जा सकते थे।

(3) मुगल सम्राट् द्वारा सूरत के मुगल शासक तथा काजियों को यह निर्देश दिये गये कि वे अंग्रेजों से सम्बन्धित सभी मामलों या समस्याओं को न्यायपूर्ण तरीके से तुरन्त निपटायें और उनके साथ शिष्टाचारपूर्ण व्यवहार करें।[2]

सारांश यह है कि सर टॉमस रो मुगल बादशाह से भारत-स्थित अपनी आंग्ल-बस्तियों के लिए स्वायत्त शासन (Local self-Government) प्राप्त करने में सफल हुए जो भारतीय विधि के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण घटना थी।

---

1. सी० इल्बर्ट (Ilbert) : दि गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया (1915), पृ० 10.
2. ब्रूस (Bruce) : एनाल्स ऑफ दि ईस्ट इण्डिया कम्पनी (ग्रन्थ 1), पृ० 240.

सर टॉमस रो के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप कम्पनी ने सूरत को अपना मुख्य व्यापारिक केन्द्र बनाया तथा सन् 1618 में वहाँ अपनी फैक्टरी[1] स्थापित की जिसका मुख्याधिकारी प्रेसीडेंट या 'गवर्नर' कहलाता था और वह कम्पनी का प्रतिनिधि होता था। इस प्रकार सूरत ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रथम प्रेसीडेन्सी थी जिसके अधीनस्थ अनेक छोटी-मोटी व्यापारिक आंग्ल-फैक्टरियाँ (व्यापारिक अड्डे) कार्यरत थीं। यहाँ पर कम्पनी ने अपने गोदाम, कार्यालय तथा कर्मचारियों के आवास-गृह आदि बनाये। कम्पनी का मुख्य व्यापार माल का आयात तथा निर्यात करना था। प्रेसीडेन्ट एण्ड कौंसिल की नियुक्ति कम्पनी द्वारा ही की जाती थी तथा कम्पनी के व्यापार एवं प्रबन्ध सम्बन्धी सभी निर्णय बहुमत (majority votes) द्वारा लिए जाते थे। अन्य सदस्यों की भाँति प्रेसीडेंट को केवल एक वोट देने का अधिकार था तथा उसे किसी प्रकार की वीटो (Veto) शक्ति प्राप्त नहीं थी। फलतः वह अपनी परिषद् (Council) के बहुमत द्वारा लिए गये निर्णय को निरस्त नहीं कर सकता था। कालान्तर में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ते में भी अपनी प्रेसीडेंसियाँ स्थापित कीं। सन् 1687 में सपरिषद्-राज्यपाल (President in Council) का कार्यालय सूरत से बम्बई स्थानान्तरित कर दिया गया तथा इसी समय से सूरत का महत्व कम हो गया और वह बम्बई प्रेसीडेंसी के अधीनस्थ एक साधारण व्यापारिक अड्डा मात्र रह गया। शनैः-शनैः कम्पनी ने इन प्रेसीडेंसियों के आस-पास के क्षेत्रों को अपने अधिपत्य में ले लिया जो मोफस्सिल क्षेत्र कहलाये तथा मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता के शहरों को प्रेसीडेंसी टाउन्स के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। यद्यपि कालान्तर में सूरत का व्यापारिक महत्व कम हो गया था परन्तु स्मरणीय है कि यहाँ अंग्रेजों द्वारा अपनी प्रथम आंग्ल-बस्ती स्थापित किये जाने के कारण यहाँ की प्रशासनिक एवं न्याय-व्यवस्था का भारतीय विधि के इतिहास में विशेष महत्व रहा है। इसी के आधार पर आगे चल कर अंग्रेजों ने अपनी न्याय पद्धति में आवश्यक सुधार किये तथा भारतीय भू-क्षेत्रों में एंग्लो-इण्डियन विधि-व्यवस्था लागू की।

सूरत फैक्टरी की प्रशासनिक व्यवस्था

कम्पनी के समस्त कर्मचारियों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया था। सबसे निचली श्रेणी के कर्मचारियों को 'राइटर्स' (Writers) कहा जाता था तथा ये ऐसे व्यक्ति हुआ करते थे जिनका कम्पनी में सेवाकाल पाँच वर्षों से कम था। इन्हें कम्पनी द्वारा दस पौंड वार्षिक वेतन दिया जाता था। कर्मचारियों की द्वितीय श्रेणी में ऐसे व्यक्तियों का समावेश था जिनका कार्यकाल पाँच वर्ष से अधिक था। उन्हें 'फैक्टर्स' (Factors) कहा जाता था तथा उनका वार्षिक वेतन बीस पौंड था। प्रत्येक राइटर को पाँच वर्ष के सेवाकाल के पश्चात् फैक्टर की श्रेणी में पदोन्नत कर दिया जाता था। इसी प्रकार प्रत्येक फैक्टर को तीन वर्ष का अनुभव प्राप्त हो जाने पर 'सीनियर फैक्टर' (Senior Factor) बना दिया जाता था तथा तीन वर्षों तक सीनियर फैक्टर रहने के पश्चात् उसे 'मर्चेन्ट' (Merchant) की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया जाता था। कम्पनी के कर्मचारियों की वरिष्ठतम श्रेणी के सदस्य 'मर्चेन्ट्स' कहलाते थे जो कम्पनी के कार्यों में अनुभवी व्यक्ति होते थे। प्रत्येक 'मर्चेन्ट' को चालीस पौण्ड वार्षिक वेतन दिया जाता था। कम्पनी के प्रशासनिक अधिकारी इसी मर्चेन्ट श्रेणी में से नियुक्त किये जाते थे। कम्पनी के प्रारम्भिक शासनकाल में उसके समस्त कर्मचारी सामूहिक जीवन व्यतीत करते थे तथा उनके आवास तथा भोजन आदि की व्यवस्था एकत्र रूप से होती थी। कर्मचारियों के आवास तथा भोजन आदि का समस्त व्यय कम्पनी द्वारा ही वहन किया जाता था। इन कर्मचारियों का वेतन सीमित होने के कारण वे प्रायः स्वतन्त्र रूप से अपना निजी व्यापार भी किया करते थे।

सूरत फैक्टरी की न्याय-व्यवस्था

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सूरत फैक्टरी के अन्तर्गत रहने वाली अंग्रेज प्रजा दोहरी विधि-व्यवस्था द्वारा शासित थी। अपने आपसी मामलों के लिए वे इंग्लैण्ड की इंग्लिश विधि का प्रयोग कर सकते थे परन्तु अंग्रेजों और भारतवासियों के विवादों को स्थानीय भारतीय न्यायाधिकारियों द्वारा देशी विधि के अनुसार ही निपटाया जाता था। अंग्रेजों के आपसी मामलों को निपटाने के लिए किसी प्रकार के नियमित न्यायालयों की व्यवस्था नहीं थी तथा वे कम्पनी के मुख्य प्रशासन—'प्रेसीडेंट-इन-कौंसिल' द्वारा निपटाये जाते थे। सन्

1 कम्पनी के व्यापारिक अड्डे को जहाँ उसके कार्यालय, गोदाम, कर्मचारियों के आवास-गृह आदि हुआ करते थे, फैक्ट्री के नाम से सम्बोधित किया जाता था।

1623 में ब्रिटेन के सम्राट जेम्स प्रथम ने भारत-स्थित कम्पनी के सपरिषद्-प्रेसीडेंट पर अपने प्रेसीडेंसी की फौजदारी न्याय-व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी सौंप दिया। परन्तु निवेदित है कि कम्पनी की प्रारम्भिक न्याय व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं थी। यद्यपि अंग्रेजों के आपसी मामलों में इंग्लिश विधि के प्रयोग किये जाने की व्यवस्था थी परन्तु प्रत्यक्षतः वाद-निर्णय बहुधा सपरिषद् प्रेसीडेंट (President in Council) के स्वविवेक पर ही निर्भर रहता था। इसका कारण सम्भवतः यह था कि प्रेसीडेंट तथा उसकी परिषद् के सदस्य कानून के ज्ञाता न होने के कारण उन्हें विधि सम्बन्धी पर्याप्त जानकारी नहीं होती थी। इसके अतिरिक्त कम्पनी के प्रारम्भिक काल में जो अंग्रेज व्यापारी भारत में आये उनमें अधिकांश ऐसे थे जिनका सामाजिक स्तर ऊँचा नहीं था। इसका कारण यह था कि कम्पनी के निदेशकों के विचार से किसी भी प्रतिष्ठित व्यक्ति को कम्पनी के व्यापारिक कार्य में जिम्मेदारी के पद पर नियुक्त करना अहितकर था। अतः उन्होंने यह निर्णय लिया था कि वे किसी भी प्रतिष्ठित अंग्रेज को कम्पनी के अधिकारी के पद पर नियुक्त नहीं करेंगे।[1] उनके विचार में कम्पनी की व्यापारिक सफलता के लिए ऐसे व्यक्ति अधिक उपयोगी थे जो नैतिक मूल्यों में विशेष विश्वास न रखते हों तथा व्यापार-विस्तार के लिए सभी प्रकार के उचित-अनुचित साधन अपनाने के लिये तैयार हों। सूरत की प्रेसीडेंसी का प्रेसीडेंट तथा उसकी परिषद् के सदस्य इन्हीं व्यापारी वर्ग के व्यक्तियों में से नियुक्त होने के कारण उनसे निष्पक्ष न्याय की अपेक्षा करना व्यर्थ था। सपरिषद्-प्रेसीडेंट (President-in-Council) के दो प्रमुख कर्त्तव्य थे कि वह कम्पनी के क्षेत्राधीन रहने वाली अंग्रेज-प्रजा में अनुशासन बनाये रखे तथा उनके सामान्य हितों की रक्षा करे । यद्यपि फौजदारी मामलों में मुस्लिम विधि का ही प्रयोग किया जाता था परन्तु मुगल शासक अंग्रेजों के मामलों में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझता था। अंग्रेजों के आपसी मामलों का भारतीय न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखे जाने का कारण संभवतः यह था कि उस समय इन न्यायालयों में स्थानीय विधि *(lex-loci)* की कल्पना नहीं की गई थी तथा व्यावहारिक वाद बहुधा विवादियों की वैयक्तिक विधि के अनुसार निपटाये जाते थे। दूसरे, भारतीय न्यायाधिकारियों को अंग्रेजी विधि का ज्ञान न होने के कारण वे अंग्रेजों के आपसी वाद इंगलिश विधि के अनुसार निपटाने में असमर्थ थे। अंग्रेजों के मामलों में सपरिषद्-प्रेसीडेंट को विस्तृत अधिकार-शक्ति दी गई थी। किसी अंग्रेज पर ब्रिटिश सम्राट् के विरुद्ध षड्यंत्र अथवा देश-द्रोह का अपराध सिद्ध हो जाने पर या किसी घोर अपराध के घटित होने पर सपरिषद्-प्रेसीडेंट द्वारा दोषी व्यक्ति को मृत्युदण्ड तक दिया जा सकता था। परन्तु मृत्युदण्ड देने के पूर्व उसे ज्यूरी (न्याय-सभ्यों) की राय जान लेना अनिवार्य था। सारांश यह कि सूरत प्रेसीडेंसी की आरम्भिक न्याय-व्यवस्था पूर्णतः व्यवस्थापिका पर निर्भर थी। इसके अतिरिक्त स्थानीय भारतीय न्यायालयों (Native Law Courts) में अनेक दोष विद्यमान थे जिनके कारण लोगों को उचित न्याय मिलना कठिन था। तत्कालीन दण्ड-विधि अपेक्षाकृत कठोर तथा क्रूरतापूर्ण थी। न्यायदान से सम्बन्धित पदाधिकारियों में भ्रष्टाचार व्याप्त होने के कारण उनसे निष्पक्ष न्याय की अपेक्षा करना व्यर्थ था। इस कुव्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों को स्थानीय न्यायालयों के प्रति किसी प्रकार की आस्था नहीं रही तथा वे इन संस्थाओं को अपनी स्वार्थसिद्धि का साधन मानने लगे। कभी-कभी तो वे स्थानीय विधि (native law) की पूर्ण उपेक्षा करते हुए भारतीय पक्षकारों से अपने विवादों का निपटारा स्वयं ही कर लेते थे। परन्तु अंग्रेजों ने इस बात का सदैव ध्यान रखा कि उनके कार्यकलापों के कारण मुगल सम्राट् नाराज न हो जाये क्योंकि इससे कम्पनी को हानि पहुँचने की संभावना थी।[2]

सन् 1615 तथा 1623 के राजकीय अनुदान (Royal Grants of 1615 and 1623)

ब्रिटेन और भारत के बीच व्यापार मुख्यतः समुद्री मार्ग के जहाजों द्वारा ही हुआ करता था। व्यापारिक प्रगति के साथ-साथ समुद्री मार्ग पर होने वाले अपराधों में वृद्धि होना स्वाभाविक था; फलतः समुद्री अपराध (sea crimes) तथा जहाजों पर उपद्रव बढ़ने लगे। इसके अतिरिक्त कम्पनी के बढ़ते हुए कारोबार के कारण भारत में कार्यरत उनके कर्मचारियों में अनुशासनहीनता बढ़ने लगी। फलतः कम्पनी के प्रशासकों को अपने कर्मचारियों पर उचित नियन्त्रण रखने के लिए ब्रिटिश सम्राट् द्वारा प्रदत्त विधायिनी शक्ति अपर्याप्त सिद्ध होने

1. ब्रूस (Bruce) : एनाल्स ऑफ दि ऑनरेबेल ईस्ट इंडिया कंपनी (ग्रंथ 1) पृ० 128.
2. कये (Kaye) : एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ ईस्ट इंडिया कंपनी (1953) पृ० 65.

लगी। आंग्ल बस्तियों में बढ़ते हुये अपराधों की रोकथाम के लिए तथा अराजकता पर काबू पाने के उद्देश्य से ब्रिटिश सम्राट् ने भारत स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनी की विधायिनी शक्ति में विस्तार किया तथा सन् 1615 के राजकीय अनुदान[1] (Royal Grant) द्वारा कम्पनी को अधिकृत किया कि वह समुद्री मार्ग पर होने वाले उत्पातों की रोकथाम के लिए समुद्री जहाजों के कप्तानों को कमीशन प्रदान कर सकती है। इस अधिकार-शक्ति के अन्तर्गत जहाजों के कमीशन्ड कप्तान अपने जहाज पर होने वाले हत्या, विद्रोह, विप्लव तथा अन्य गम्भीर अपराधों के लिए दोषी व्यक्ति को दण्डित कर सकते थे। इसी प्रकार सन् 1623 के राजकीय अनुदान[2] द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों में बढ़ती हुई उद्दंडता और अनुशासनहीनता को नियन्त्रण में रखने की दृष्टि से ब्रिटिश सम्राट् ने कम्पनी को यह अधिकार-शक्ति प्रदान की कि वह प्रेसीडेन्ट तथा अपने कुछ अन्य अधिकारियों को कमीशन प्रदान करे जिससे वे स्थानीय अपराधों के लिए दोषी व्यक्तियों को समुचित दण्ड दे सकें। परन्तु गम्भीर अपराधों के मामलों में इन कमीशन्ड अधिकारियों को ज्यूरी से परामर्श लेना अनिवार्य था। इस प्रकार इन राजकीय अनुदानों के द्वारा कम्पनी को समुद्री मार्ग तथा भारत-स्थित अपनी अंग्रेजी बस्तियों में शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने के लिए पर्याप्त अधिकार प्राप्त हुए जो कम्पनी के लिए हितकारी साबित हुए।

सन् 1657 का राजलेख

इस राजलेख (Charter) द्वारा ईस्ट इंडीज तथा भारत में कार्यरत संयुक्त स्टाक कम्पनियों (Joint Stock Companies) को ईस्ट इण्डिया कम्पनी में एकीकृत किया गया।

सन् 1661 का राजलेख

व्यापारिक प्रगति के साथ कम्पनी को दक्षिण भारत के आन्तरिक क्षेत्रों में अपनी बस्तियाँ स्थापित करना आवश्यक हो गया। अत: कम्पनी ने ब्रिटिश सम्राट् के पास एक प्रार्थना-पत्र भेजा जिसमें यह याचना की गयी थी कि उसे दी गई अधिकार शक्ति भारत की आंग्ल बस्तियों की प्रजा पर उचित नियन्त्रण रखने के लिए अपर्याप्त थी जिसके कारण कम्पनी को अपनी बस्तियों में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने में कठिनाई अनुभव हो रही थी। अत: भारत स्थित कम्पनी के प्रेसीडेन्ट तथा उसकी परिषद् को अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में रहने वाले अंग्रेज निवासियों को इंग्लिश विधि के अनुसार दण्डित करने के लिए समुचित अधिकार शक्ति प्रदान की जाय। इसी प्रकार यह भी आवश्यक समझा गया कि इन बस्तियों में रहने वाले सभी अंग्रेजों को प्रेसीडेन्ट तथा उसकी परिषद् के आदेशों का पालन करना अनिवार्य हो । इसके परिणामस्वरूप 3 अप्रैल, सन् 1661 को इंग्लैण्ड के सम्राट् चार्ल्स द्वितीय ने कम्पनी को नया राजलेख[3] (Charter) प्रदान किया जिसके द्वारा कम्पनी अपने व्यापारिक अड्डों (फैक्ट्रियों) के लिए राज्यपाल तथा उसकी परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति कर सकती थी। प्रत्येक आंग्ल फैक्ट्री के सपरिषद् राज्यपाल को उसके क्षेत्राधिकार में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर दीवानी तथा फौजदारी मामलों में इंग्लिश विधि के अनुसार निर्णय देने का अधिकार प्राप्त हुआ। ऐसी अंग्रेजी बस्तियों में जहाँ राज्यपाल (Governor) नियुक्त नहीं किया गया था, फैक्ट्री के मुख्याधिकारी को यह अधिकार दिया गया कि उसके क्षेत्र में घटित होने वाले अपराधों के लिए दोषी अपराधियों को दण्ड दिलाने के लिए वह उन्हें निकटस्थ सपरिषद्-राज्यपाल के पास भिजवाने की व्यवस्था करे अथवा उन्हें इंग्लैण्ड भिजवा दे। भारतीय विधि के इतिहास में सन् 1661 के राजलेख का विशेष महत्व इसलिए है क्योंकि इसके अन्तर्गत कम्पनी को दी गई न्यायिक शक्ति के परिणामस्वरूप आंग्ल बस्तियों में रहने वाले सभी निवासी चाहे वे अंग्रेज हों अथवा देशी-भारतीय, दीवानी तथा फौजदारी मामलों के लिए कम्पनी के सपरिषद्-राज्यपाल के क्षेत्राधिकार में माने गये तथा राज्यपाल की दण्ड सम्बन्धी अधिकार शक्ति में इतनी अधिक वृद्धि की गई कि वह मृत्युदण्ड तक देने की क्षमता रखने लगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सन् 1661 के चार्टर द्वारा ब्रिटिश सम्राट् ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के क्षेत्राधीन भारतीय भू-प्रदेशों में एक निश्चित न्याय-व्यवस्था लागू की जो इंग्लिश विधि पर आधारित थी। अंग्रेजों ने इस राजलेख द्वारा यह संकेत देने का प्रयत्न किया था कि अब कम्पनी एक

---

1. दिनांक 14 दिसंबर 1615 का रॉयल चार्टर (13 Jac I).
2. दिनांक 14 फरवरी 1622 की रॉयल ग्रांट (20 Jav I).
3. अप्रैल 3, 1661 (13 Car II).

व्यापारिक प्रतिष्ठान मात्र न रहकर क्षेत्रीय प्रभुत्व स्थापित करने की ओर कृतसंकल्प थी।[1] इस चार्टर के महत्व का एक अन्य कारण यह भी है कि इसके द्वारा सपरिषद्-राज्यपाल (Governor-in-Council) के नेतृत्व में भारतीय आंग्ल बस्तियों के लिए एक निश्चित शासन व्यवस्था लागू की गई जिसमें व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के कार्य एक ही संस्था (सपरिषद् राज्यपाल) में केन्द्रित किये गये थे। इन बस्तियों की न्याय व्यवस्था मूलत: इंग्लिश विधि पर आधारित होने के कारण यह स्वाभाविक था कि वह अंग्रेजों के लिए पक्षपातपूर्ण तथा देशी भारतीयों के लिए अहितकर थी।

सूरत का बन्दरगाह ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र होते हुए भी ब्रिटिश कम्पनी को वहाँ से अपनी अन्य फैक्ट्रियों पर नियन्त्रण रखने में कठिनाई अनुभव हो रही थी। यही कारण था कि जून, 1653 में मद्रास का व्यापारिक अड्डा जावा स्थित बेन्टम (Bantum) केन्द्र के नियन्त्रण से मुक्त हुआ व उसे सूरत प्रेसीडेन्सी के अधीन न रखकर स्वतन्त्र प्रेसीडेन्सी के रूप में विकसित किया गया तथा बंगाल और कारोमण्डल तट की सभी अंग्रेजी फैक्ट्रियाँ इसके अधीनस्थ रखी गईं। सन् 1687 में कम्पनी ने अपना मुख्य कार्यालय सूरत से हटाकर बम्बई में स्थापित किया तथा वहाँ अपनी प्रेसीडेन्सी कायम की। इसके बाद सूरत की बस्ती कम्पनी की एक साधारण फैक्ट्री मात्र बनी रही तथा उसका केवल ऐतिहासिक महत्व ही रह गया। कम्पनी ने दिसम्बर, 1699 में बंगाल में स्थित अपने सभी व्यापारिक अड्डों (फैक्ट्रियों) को मद्रास प्रेसीडेन्सी के क्षेत्राधिकार से अलग कर दिया तथा उन्हें फोर्ट विलियम (कोलकत्ता) की प्रेसीडेन्सी[2] के क्षेत्राधिकार में रखा। इस समय से लेकर सन् 1773 में रेग्यूलेटिंग एक्ट के पारित होने तक मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता प्रेसीडेन्सियों का स्तर एक समान बना रहा। परन्तु सन् 1773 के अधिनियम द्वारा मद्रास तथा बम्बई की प्रेसीडेंसियों को कलकत्ता प्रेसीडेन्सी के अधीनस्थ रखा गया तथा इस प्रकार इन दोनों प्रेसीडेंसियों का स्तर कलकत्ता प्रेसीडेन्सी की तुलना में घट कर कम हो गया।